4

गृहस्थी

राजेन्द्र परदेसी

कितनी भी जल्दी की जाय, आफिस पहुँचने में देर हो ही जाती है। घर से यदि जल्दी निकला जाय तो बस की प्रतीक्षा में समय बीत जाता है। आफिस नज़दीक होता तो यह परेशानी न होती। पैदल ही चला जाता। लेकिन रोज-बरोज दस किलोमीटर की पैदल यात्रा की जहमत उठायी भी तो नहीं जा सकती। पाँच किलोमीटर इधर से तो पाँच किलोमीटर उधर से।

एक पुरानी साइकिल है। वह भी दो महीने से खराब पड़ी है। ढ़ाई-तीन सौ रुपये हों तो कहीं जाकर दोनों टायर-ट्यूब बदले जायँ। बड़ी मुश्किल से तो घर का खर्चा चलता है। कितना भी करो किसी न किसी का उधार चढ़ा रहता है। साल में जब एक बार बोनस मिलता है तो सोचता हूँ कोई चीज़ ले लूँ। लेकिन पुराने कर्जे सिर पर चढ़े मिलते हैं। अब तो सोचना ही छोड़ दिया है। सोचने से तो कुछ बनता ही नहीं, दिमाग अलग खराब होता है।

इस बार बोनस मिला तो सोचा था कि गरम सूट नहीं, तो कम से कम एक कोट ही सिलवा लूँ। रहा पैंट तो सूती से ही काम चला लूँगा। ससुराल से साले-सालियाँ जीजाजी मिलने चले आये। मन मरोड़ के स्वागत करना ही पड़ा। कोट सिलवाने का विचार भी स्थगित करना पड़ा। अब तो पता नहीं क्यों, रिश्तेदारों के आ धमकने पर मुझे बुखार आ जाता है।

लगता है, आज भी देरी हो जायेगी। साढ़े नौ तो घर पर ही बज गये। श्रीमतीजी हैं कि जब भी कहीं चलने की तैयारी करो, कोई-न-कोई समस्या लेकर प्रस्तुत हो जाती है।

''आफिस जा रहे हो क्या?'' तैयार होते देखकर पत्नी ने पूछा।

''क्यों क्या बात है?''

''शाम के लिए कुछ नहीं है।''

''तो क्या? इसी समय बताना था। पहले नहीं बता सकती थी।'' पत्नी पर गुस्सा आ रहा था। इसीलिए गुस्से के लहजे में कहा, ''तुम्हारी तो आदत हो गयी है, जब चलने लगो तो अपनी रोनी सूरत लेकर खड़ी हो जाती हो।''

स्वाभाविक था, पत्नी को भी गुस्सा आ गया। बोली, ''तो महीने भर का सामान इकट्ठे ला क्यों नहीं देते। झगड़ा ही खत्म हो जाय।''

ISSN:2583-8849

''झगड़ा तो ज़िन्दगी भर नहीं खत्म हो सकता। कितना भी ला दूँ तुम्हें पूरा ही नहीं पड़ता।'' अपनी असमर्थता को छुपाने के लिए मैं बोला।

मैं तो समस्या से मुँह मोड़ सकता था। लेकिन पत्नी कैसे मोड़ती। समस्या से उसे जूझना ही था। बोली, ''तो क्या मैं खा जाती हूँ।''

''खा नहीं जाती हो। मेरा मतलब हिसाब से खर्च करना चाहिए।''

''हिसाब से कैसे खर्च किया करूँ? पहले तुम्हारे कवि, मित्रों से पूरा पड़े ना। फिर बाकी का सोचूँ।'' अपनी खीझ उतारते हुए पत्नी ने जवाब दिया।

''तुम्हारे भाई-बहन आते हैं तो कुछ नहीं। मेरे दो-चार मित्र आ जाते हैं, तो सारा खर्चा हो जाता है।''

''एक बार खुद ही खर्च कर क्यों नहीं देख लेते ? मैं हूँ तो तुम्हारी गृहस्थी घसीट रही हूँ। दूसरी होती तो पता चलता।'' कहकर वह रोने लगी।

पराजित होते देखकर मैं बोला, ''अच्छा देखो, कहीं से प्रबन्ध करूँगा।''

''कहाँ से करोगे अभी तो तनख़्वाह मिलने में चार दिन बाकी है।''

''तो लाला के यहाँ से उधार सामान मँगा क्यों नहीं लेतीं?''

''पप्पू को भेजा नहीं था क्या?''

''तो क्या कहा उसने?''

''कहा कि आटा नहीं है। शायद शाम तक आ जाय।''

''तो शाम तक उसके यहाँ आ ही जायेगा। फिर भेजकर मँगा लेना।''

''वह उधार नहीं देगा।''

''क्यों?''

''पप्पू कह रहा था कि उसके सामाने दूसरे ग्राहक को आटा दिया मगर जब उसने माँगा तो कह दिया कि खत्म हो गया।''

''पिछले महीने का पैसा बाकी है न। इसलिए ऐसा कहा होगा। साला! बहुत काइयाँ है। सोचता होगा कि और ले जायेंगे तो पता नहीं कब देंगे।''

''उसका आज तक कभी बाकी रहा भी है कि इस बार रहेगा। अधिक-से-अधिक यही तो होता है कि इस महीने का उस महीने अदा कर दिया जाता है। इसी महीने नहीं दिया गया है।'' कुछ क्षण रुककर पुनः बोली, ''अगर बहन गुड़िया और भाई पप्पू दोनों न आते तो इस महीने भी दे दिया जाता। वे बेचारे पहले-पहले आये थे। कुछ न देती तो क्या सोचते!''

आफिस जाने को देरी हो रही थी। इसलिए बोला, ''छोड़ों इन बातों को आफिस में ही किसी से माँग लूँगा।''

''किससे माँगोगे?''

''वर्मा से कहूँगा, अभी अकेला है। खर्च भी उसके कम हैं। अपने पास कुछ-न-कुछ रखता ज़रूर है।''

''उससे भी तो पिछले महीने दो सौ रुपये लिये थे। अभी दिया भी नहीं।'' अपनी जानकारी देते हुए पत्नी बोली।

''दिया होता तो क्या तुम्हें मालूम न होता।''

ISSN:2583-8849

''न हो तो तुम्हीं किसी पड़ोसन से माँग लो। पहली को दे देना।''

''किससे माँगू। सभी के यहाँ तो यही हाल है। एक मिसेज श्रीवास्तव हैं। उनके पास जाओं तो पहले घण्टों बैठायेंगी। फिर कहेंगी कि क्या बताऊँ मिसेज पाण्डेय, आपने कल बताया होता तो जरूर व्यवस्था कर देती। हमें क्या मालूम था कि आपको पैसे की ज़रूरत है। नहीं तो साड़ी अगले महीने खरीदती। कल मार्केट गयी थी तो एक साड़ी पसन्द आ गयी। पास में पैसे थे, खरीद लिया।'' कुछ पलों की खामोशी के बाद पत्नी बोली, ''कहो तो एक बार फिर जाकर उनका भाषण सुन आऊँ।''

''रहने दो। रतनलाल से माँग लूँगा।''

''वह भी तो कौन मिसेज श्रीवास्तव से कम हैं।''

''तुम्हें कैसे मालूम।''

''तुम्हीं तो कहते हो कि जब भी उससे कोई चीज़ माँगों, कोई-न-कोई बहाना बना देता है। खुद बताते हो खुद ही भूल जाते हो। मैं तो कभी नहीं भूलती।'' अपनी याद्दाश्त की प्रशंसा करते हुए पत्नी ने कहा।

''एक चिन्ता हो तो बात भी है। यहाँ तो आफिस से लेकर घर तक चिन्ताओं का सिलसिला लगा रहता है।''

''तो क्या समझते हो कि तुम्हें ही सारी चिन्ता रहती है। मुझे नहीं रहती। दिन भर काम करते-करते पश्त हो जाती हूँ। रात को लेटती हूँ तो सारा बदन टूटता है।''

''महरिन क्यों नहीं लगा लेती। कुछ तो बोझ हल्का होगा। बिना मतलब के ही तो परेशान होती हो।'' सहानुभूति जताने के लिए मैं बोला। लेकिन पत्नी ने दूसरा ही अर्थ लगा लिया। बोली, ''लगा क्यों नहीं देते। कौन मना करता है।'' फिर अपने मन की पीड़ा को उड़ेला, ''इतने साल हो गये। अपने मन से कभी कोई सामान लाकर दिया? कब से कह रही हूँ कि एक पिक्चर दिखा दो। बस यही जवाब सुनती हूँ कि सैकड़ों रुपये खर्च हो जायेंगे। .... तुम्हें तो पत्नी नहीं, नौकरानी की जरूरत थी।''

वातावरण काफी विषाक्त होता जा रहा था और घड़ी की सुइयाँ बढ़ती जा रही थी। इस कारण मैं समय से समझौता करते हुए कहा, ''आफिस से लौट आने दो। कोई न कोई प्रबन्ध करूँगा।''

दिन भर आफिस के काम में मन नहीं लगा। सामने टेबुल पर सिर्फ फाइल खोलकर बैठा रहा जिससे कोई देखे तो समझे कि काम कर रहा हूँ। ऐसी ही मनःस्थितियाँ दूसरों की भी होती होंगी। काम हो तो कैसे हो।

आज आफिस से पैदल ही चल पड़ा। सोचा, एक ओर का बस-किराया ही बचेगा। गृहस्थी के किसी काम आयेगा।

लौटने में देर होनी थी, हुई। इसीलिए जब घर पहुँचा तो देखा कि पत्नी दरवाज़े पर ही खड़ी है। देखते ही पूछा, ''आज देर क्यों लगा दी?''

''पैदल आया हूँ।''

''क्यों? बस के लिए पैसे नहीं थे क्या?'' फिर सोचकर बोलीं, ''आपके पैण्ट की जेब में दस के दो सिक्के रख तो दिया था। नहीं मिला क्या?''

ISSN:2583-8849

मैंने सच्चाई छुपाते हुए कहा, ''आफिस से सुन्दरलाल जी से बातचीत करते हुए उनके घर तक आ गया था तो सोचा आधा फासला तय हो ही गया है, क्यों न पैदल ही चलूँ। बस पैदल चला आया।''

''इतनी दूर तो कभी पैदल चले नहीं। थक गये होंगे। चलिए मुँह हाथ धोकर फ्रेश हो लीजिए तब तक मैं चाय लाती हूँ।''

''गाँव छोड़े तीस बरस हो गये। तब से आज तक वास्तव में कभी इतनी दूर पैदल नहीं चला था। वह भी इस उम्र में। पहले की बात दूसरी थी। गाँव से शहर तक पैदल ही चला जाता था। ... अब तो दस कदम भी चलना पड़ता है तो थकावट आ जाती है।... ताक़त भी कहाँ से आये?... यहाँ गाँव की तरह न तो दूध है न घी। ले-देकर मक्खन निकाले दूध की चाय यों कहिए गरम पानी।... उसके सहारे अपना शरीर ढोता रहूँ, यही बहुत है।''

थकावट के कारण आज की चाय कुछ ज्यादा ही अच्छी लगी। साथ में पकौड़ी भी लज़ीज लगी।

आदमी को जब आराम मिलता है तो इधर-उधर की सोचने लगता है। अन्यथा अपने ही में इतना मशगूल रहता है कि दूसरे के बारे में सोचने की उसे फुरसत ही नहीं रहती।

कुछ आराम मिला तो पत्नी की आवाज़ दी, ''गोपाल की माँ! जरा सुनना तो।''

''क्या है?... और चाय लीजियेगा क्या?'' पत्नी ने चौके में बैठे ही बैठे सवाल उछाल दिया।

''नहीं, एक बात पूछनी है।''

''अभी आयी।''

''वह आयीं तो पूछा, पैसे कहाँ से लायीं?''

''मिसेज वर्मा से माँगा था। उन्होंने मना कर दिया तो फिर किसी से नहीं माँगा। सोचा, किसी से माँगना व्यर्थ है। इसीलिए तुम्हारी जो पुरानी पत्रिकाएँ और कागज़ थे उन्हें बेच दिया। बीस किलो थे। दस रुपये के हिसाब से दो सौ रुपये मिले।''

इस दास्तान को सुनकर सिर पर हाथ रखकर बैठ गया। वर्षों की मेहनत से एकत्रित सामग्री दो सौ रुपये में बिक गयी थी। मैं चिन्ता में गहरे समा रहा था कि पत्नी बोल पड़ी, ''सोच क्या रहे हो? उसे कोई पूछता भी था? कितने को तो तुम दिखा चुके थे। कोई उसे छापने को तैयार था? अच्छा हुआ कि रद्दीवाले ने उसे सौ रुपये दे दिये। इस महीने कोई कर्ज नहीं चढ़ा। नहीं तो पता नहीं...।''

एक उच्छवास भरकर मैंने कहा, ''हाँ, अच्छा हुआ।... इतने दिनों की मेहनत ने इस महीने कर्ज़ बढ़ने से बचा लिया।''

लखनऊ, उत्तर प्रदेश

 ISSN:2583-8849